श्रीराजकुमार जैन,
दर्शनायुर्वेदाचार्य

कर्म स्वरूप और बंध

अपने मूलभूत सिद्धान्तों के वैशिष्ट्य के कारण जैनदर्शन भारतीय दर्शनों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है. जैनदर्शन के अनुसार वेदों को पौरुषेय माना गया है तथा जैनदर्शन ईश्वर को सृष्टिकर्ता स्वीकार नहीं करता. यही कारण है कि उस पर नास्तिकता का आरोप किया है. जैनदर्शन के समान बौद्धदर्शन एवं चार्वाकदर्शन भी वेदों को प्रमाण स्वीकार नहीं करते. अतः उनकी गणना भी नास्तिक दर्शनों में की गई है. किन्तु जैनदर्शन में अनेक ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिनके आधार पर उसकी आस्तिकता स्वतः ही सिद्ध हो जाती है. उन्हीं सिद्धान्तों में से एक 'कर्म-सिद्धान्त' भी है. वैसे तो कर्म-सिद्धान्त को अन्य षड्दर्शन के साथ बौद्धदर्शन ने भी स्वीकार किया है, किन्तु अपनी विशेषताओं के कारण जैनदर्शन द्वारा प्रतिपादित 'कर्म-सिद्धान्त' अपना विशेष महत्त्व रखता है. जैन-ग्रंथों में कर्म-सिद्धान्त का जैसा सांगोपांग, तर्कसंगत और वैज्ञानिक विवेचन मिलता है, अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता.

कर्मसिद्धान्त सम्बन्धी विषय इतना गहन एवं विस्तृत है कि एक छोटे से निबंध में उसका सम्पूर्णतः प्रतिपादन सम्भव नहीं है अतः सामान्यतः कर्म क्या है और उसका आत्मा के साथ कैसे और क्यों सम्बन्ध होता है ? इसका अत्यन्त संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत लेख में प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है.

जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक संसारी आत्मा कर्मों से बद्ध है. कर्म के पाश में आत्मा वैसे ही बंधी हुई है, जैसे जंजीरों से किसी को बांध दिया जाता है. यह कर्मबन्धन आत्मा को किसी अमुक समय में नहीं हुआ. अपितु अनादिकाल से है. जैसे—खान से सोना शुद्ध नहीं निकलता अपितु अनेक मलों (अशुद्धियों) से युक्त निकलता है, वैसे ही संसारी आत्माएं भी कर्मबन्धनों से जकड़ी हुई ही रही हैं. यदि आत्माएं किसी भूतकाल में शुद्ध होती तो फिर उनके कर्म बन्धन नहीं हो सकता. क्योंकि शुद्ध आत्मा मुक्त होता है. आत्मा की मुक्ति के अनन्तर कर्मबन्धन सम्भव नहीं. आत्मा के कर्मबन्धन के लिये आन्तरिक अशुद्धि आवश्यक है. शुद्ध आत्मा के लिये अशुद्धि का प्रश्न ही नहीं उठता. अशुद्धि के बिना कर्मबन्ध का भी प्रश्न नहीं उठता. यदि अशुद्धि के बिना भी कर्म बन्धन होने लगे तो, मुक्ति को प्राप्त आत्माओं को भी कर्म बन्धन का प्रसंग उपस्थित हो जायगा. ऐसी अवस्था में आत्मा की मुक्ति के लिए प्रयत्न करना हो जायगा.

अनादि काल से आत्मा का कर्मबन्ध और उसका संसार की विविध गतियों में जन्म लेना, इसका प्रतिपादन आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने 'पंचास्तिकाय' नामक ग्रन्थ में बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है :—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो,
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी।
गदिमधिगदस्य देही देहादो इन्दियाणि जायंते,
तेहि दु विसयग्गहणं तत्तो रागो वा दोसो वा।
जायदि जीवस्सेवं भावो संसारचक्कवालम्मि,
इदि जिणवरेहिं भणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् जो जीव संसार में स्थित है, अर्थात् जन्म और मरण के चक्कर में पड़ा हुआ है, उसके राग रूप और परिणाम होते हैं. उन परिणामों से नए कर्म बंधते हैं. कर्मों से विभिन्न गतियों में जन्म लेना पड़ता है. जन्म लेने से शरीर मिलता है. शरीर में इन्द्रियाँ होती हैं. इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण होता है. जीव विषयों को ग्रहण करने से इष्ट विषयों में राग और अनिष्ट विषयों से द्वेष करता है. इस प्रकार संसार रूपी चक्रकाल में पड़े हुए जीव के भावों से कर्मबन्ध और कर्मबन्ध से राग-द्वेष रूप भाव होते रहते हैं. यह चक्र अभव्य जीव की अपेक्षा से अनादि अनन्त है और भव्य जीव की अपेक्षा से अनादि सान्त है.

सामान्य रूप से जो भी कुछ किया जाता है वह कर्म कहलाता है. इस संसार में समस्त प्राणी क्रियाशील रहते हैं, मनुष्य भी अपने व्यक्तिगत दैनिक जीवन में अनेक प्रकार की क्रियाओं को करता है. विविध प्रकार की ये क्रियाएं ही साधारणतया कर्म कहलाती हैं. प्राणी जैसा कर्म करता है वह वैसे ही फल का भागी होता है. कर्म के अनुसार फल को भोगना नियति का क्रम है. कर्मसिद्धांत को जैन, सांख्य, योग, नैयायिक, वैशेषिक और मीमांसक आदि आत्मवादी दर्शन तो मानते ही हैं, किन्तु अनात्मवादी एवं अनीश्वरवादी दोनों ही इस विषय में एक मत हैं. कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करने में यद्यपि चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त समस्त दर्शनों में मतैक्य है, तथापि कर्म के फलस्वरूप एवं उसके फल देने के सम्बन्ध में ईश्वरवादी एवं अनीश्वरवादी दोनों में मौलिक मतभेद है.

ऊपर कर्म के विषय में सामान्य रूप से कहा जा चुका है कि जो कुछ किया जाता है, वह कर्म है. इसके अन्तर्गत मनुष्य की व्यक्तिगत दैनिक क्रियाओं का भी समावेश हो जाता है. जैसे खाना, पीना, उठना, बैठना. सोचना, विचारना, हंसना चलना, फिरना, बोलना, खेलना, कूदना, गाना, बजाना आदि. मनुष्य जो भी राग या द्वेष के वशीभूत होकर करता है उसी के अनुसार उसे फल मिलता है. परलोक मानने वाले दर्शनों के अनुसार मनुष्य द्वारा कर्म किये जाने के उपरांत वे कर्म जीव के साथ अपना संस्कार छोड़ जाते हैं. ये संस्कार ही भविष्य में प्राणी को अपने पूर्वकृत कर्म के अनुसार फल देते हैं. पूर्वकृत कर्म के संस्कार, अच्छे कर्म का फल अच्छा एवं बुरे कर्म का फल बुरा देते हैं. पूर्वकृत कर्म अपना जो संस्कार छोड़ जाते हैं और उन संस्कारों द्वारा जो प्रवृत्ति होती है उसमें मूल कारण राग या द्वेष होता है किसी भी कर्म की प्रवृत्ति राग या द्वेष के अभाव में असम्भावित है और जब सम्भव होती है तो कर्मबन्ध जनक नहीं होती है. अतः संस्कार द्वारा प्रवृत्ति एवं प्रवृत्ति द्वारा संस्कार की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है. यह परम्परा अथवा चक्रवत् परिभ्रमण ही संसार कहलाता है. कर्म, संस्कार एवं प्रवृत्ति की परम्परा तथा संसार चक्र के विचारों का दिग्दर्शन हमें प्रायः दर्शनों में प्राप्त होता है. किन्तु जैनदर्शन के विचार में पूर्वोक्त विचारों से कुछ भिन्नता है.

जैनदर्शन के अनुसार कर्म संस्कारमात्र ही नहीं है अपितु एक वस्तुभूत पदार्थ है जिसे कार्मणजाति के दलिक या पुद्गल माना गया है. वे दलिक रागी, द्वेषी जीव की क्रिया से आकृष्ट होकर जीव के साथ दूध-पानी की तरह मिल जाते हैं. यद्यपि वे दलिक भौतिक हैं, तथापि जीव के कर्म अर्थात् क्रिया द्वारा आकृष्ट होकर जीव के साथ एकमेक हो जाते हैं. कहने का तात्पर्य यह है कि जो भी कर्म किया जाता है, वह जीव या आत्मा के साथ संयुक्त हो जाता है और तब तक संयुक्त रहता है जब तक कि वह अपना फल नहीं दे देता. इस प्रकार प्राणी द्वारा किया गया कोई भी कर्म आत्मा से पृथक् नहीं रहता. संसार में कर्म से घिरे हुए आत्मा की स्थिति ठीक वैसी ही रहती है जैसे कि जाल में फंसी हुई मछली की अथवा लोहे के सींखचों वाले पिंजरे में बन्द सिंह की.

अन्य दर्शनों ने कर्म को क्षणिक मानकर उसके संस्कार को स्थायी माना है. अतः कर्म की सत्ता तो क्रिया करने के बाद ही समाप्त हो जाती है, किन्तु उसका संस्कार ही स्थायी रूप से आत्मा के साथ रहता है. जैनधर्म में यहाँ कुछ मतभेद है. वस्तुस्थिति यह है कि कर्म एक वस्तुभूत पदार्थ है और वह राग द्वेष अथवा भाव से युक्त जीव द्वारा की गई क्रिया से आकृष्ट होकर उसमें (जीव में) मिल जाता है. कहने का तात्पर्य यह है कि राग, द्वेष से युक्त जीव की प्रत्येक मानसिक वाचनिक और कायिक क्रिया के साथ एक द्रव्य जीव में आता है जो उसके रागद्वेष रूप भावों का निमित्त पाकर उससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्ध जाता है और आगे जाकर अच्छा या बुरा फल देता है. इसी बात का स्पष्टीकरण निम्न रूप से किया गया है—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो ,
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं । —प्रवचनसार

अर्थात् जब राग, द्वेष से युक्त आत्मा अच्छे या बुरे कामों में परिणत होता है तब कर्म रूपी रज ज्ञानावरणादि रूप से उसमें प्रवेश करती है.

इससे यह स्पष्ट है कि कर्म एक मूर्तिक पदार्थ है जो जीव के साथ बंध जाता है. यहाँ एक ऐसी आशंका उठ खड़ी होती है कि कर्म मूर्तिक है एवं आत्मा अमूर्तिक. अतः दोनों का बन्ध सम्भव नहीं. मूर्तिक के साथ मूर्तिक का बंध तो हो सकता है किन्तु अमूर्तिक के साथ मूर्तिक का बन्ध कैसे हो सकता है ? इसका समाधान यही है कि अन्य दर्शनों की भाँति जैनदर्शन भी जीव और कर्म के सम्बन्ध को अनादि मानता है. संसारी जीव अनादि काल से मूर्तिक कर्मों से बँधा हुआ है और इसीलिए वह भी मूर्तिक हो रहा है, जैसा कि 'द्रव्य संग्रह' में स्पष्टतः कहा है—

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठणिच्चिया जीवे ,
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ।

अर्थात् वास्तव में जीव में पाँचों रूप, पाँचों रस, दोनों गन्ध और आठों स्पर्श नहीं रहते, इसलिए वह अमूर्तिक है. जैनदर्शन में रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुण वाली वस्तु को मूर्तिक कहा है. किन्तु अनादि कर्म बन्ध के कारण व्यवहार में जीव मूर्तिक है. अतः कथंचित् मूर्तिक आत्मा के साथ मूर्तिक कर्म द्रव्य का सम्बन्ध होता है.

सारांश यह है कि कर्म के दो भेद हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म. जीव से सम्बन्ध कर्म पुद्गल को द्रव्य कर्म कहते हैं और द्रव्य कर्म के प्रभाव से होने वाले जीव के राग-द्वेष रूप भावों को भावकर्म कहते हैं. द्रव्यकर्म भावकर्म का कारण है और भावकर्म द्रव्यकर्म का कारण है. द्रव्यकर्म के विना भावकर्म और भावकर्म के विना द्रव्यकर्म—नहीं होते हैं. इन कर्मों का बन्ध ही जीव के जन्म मरण एवं विविध गतियों में परिभ्रमण का कारण है. इस प्रकार आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि काल से चक्रवत् चला आ रहा है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org